नाइट्रोजन स्थिरीकरण के विविध तरीके

आ. दि. कर्वे

इस कृषि प्रधान देश में खेती में नाइट्रोजन का महत्व बताने की ज़रूरत नहीं है। वैसे तो हवा में 78% नाइट्रोजन होता है लेकिन पेड़-पौधे इसे श्वसन के ज़रिए सीधे-सीधे उपयोग में नहीं ले पाते। पौधों को नाइट्रोजन मिलने का एक स्रोत है - नाइट्रोजन स्थिरीकरण प्रक्रिया। इस प्रक्रिया

में पौधे अपनी जड़ों के मार्फत नाइट्रोजन के यौगिकों को प्राप्त करते हैं। यदि मिट्टी में पर्याप्त मात्रा में नाइट्रोजन नहीं हो तो नाइट्रोजनयुक्त रासायनिक खाद का इस्तेमाल किया जाता है ताकि पौधों की नाइट्रोजन संबंधी ज़रूरतें पूरी हो सकें। लेकिन रासायनिक खाद की लगातार बढ़ती कीमतों ने यह सोचने पर मज़बूर कर दिया है कि पौधों की नाइट्रोजन संबंधी ज़रूरतों को पूरा करने के और क्या विकल्प हो सकते हैं? विकल्पों की तलाश में कुछ फसलों के लिए नील-हरित शैवाल नाइट्रोजन के सस्ते विकल्प बन कर सामने आए, तो कुछ अन्य फसलों के लिए जेनेटिक्स की तकनीक बेहतर साबित हुई।

सभी प्रकार की वनस्पतियों एवं जीव-जन्तुओं के लिए नाइट्रोजनयुक्त पदार्थों, विशेषकर प्रोटिन्स की आवश्यकता होती है। पानी में और मिट्टी में कुछ मात्रा में नाइट्रोजनयुक्त लवण विद्यमान रहते हैं। वनस्पतियां इन्हें अवशोषित करती हैं और चयापचय के लिए उपयुक्त जैविक (ऑर्गेनिक) यौगिकों में इनका रूपान्तरण करती हैं। प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से जंतु अपनी नाइट्रोजन संबंधी ज़रूरतों के लिए वनस्पतियों पर ही निर्भर रहते हैं। प्रकृति में कुछ ऐसे सूक्ष्म जीव पाए जाते हैं जो वातावरण से सीधे नाइट्रोजन को ग्रहण करते हैं और इसका रूपान्तरण उपयुक्त जैविक यौगिकों में करते हैं। इस प्रक्रिया को नाइट्रोजन स्थिरीकरण (Nitrogen Fixation) कहते हैं।

सन् 1888 में दो जर्मन वैज्ञानिकों - हेल्रीगेल एवं विल्फार्थ ने दलहनों की घास-कुल के अनाजों से तुलना की। इसके लिए उन्होंने पौधों की वृद्धि-दर, इन में मौजूद नाइट्रोजनयुक्त यौगिकों की मात्रा जैसे पैमानों को इस्तेमाल किया। इस तुलना के बाद उन्होंने यह संभावना व्यक्त की कि शायद दलहनों के पौधे हवा में मौजूद नाइट्रोजन का इस्तेमाल कर पाते हैं। वैसे आज हम यह बखूबी जानते हैं कि दलहनों में पौधों की जड़ों पर मौजूद गठानों में रायज़ोबियम परि

के बैक्टेरिया होते हैं। ये बैक्टेरिया हवा में मौजूद नाइट्रोजन को लेकर पौधों को नाइट्रोजन उपलब्ध कराते हैं।

कुदरत बनाम रासायनिक खाद

ज़्यादा-से-ज़्यादा उत्पादन पाने की होड़ में हम जो पहला कदम उठाते हैं वो है रासायनिक खादों का ज़रूरत से ज़्यादा इस्तेमाल करना। खेती-बाड़ी में दलहनी फसलों (चना, मूंग, अरहर, बल्लर, सोयाबीन, मूंगफली आदि) को छोड़कर अन्य सभी फसलों के लिए नाइट्रोजनयुक्त खाद की आवश्यकता होती है। हां, खाद की मात्रा फसल और उसकी नस्ल के हिसाब से कम-ज़्यादा हो सकती है। जैसे कम अवधि में पकने वाली गेहूं की फसल या संकरित ज्वार के लिए खाद की मात्रा 100 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर है; वहीं यह गन्ने की फसल के लिए 250 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर तक होती है।

नाइट्रोजनयुक्त खाद का निर्माण भी वातावरण से प्राप्त नाइट्रोजन से किया जाता है। इसके लिए हैबर विधि अपनाई जाती है। इस विधि में उच्च ताप (4000 डिग्री सेंटीग्रेड) व 200 गुना वायुमंडलीय दाब की ज़रूरत होती है। इस ताप और दाब को बनाए रखने में ही बड़े पैमाने पर ऊर्जा का व्यय होता है। हैबर विधि द्वारा विश्व में प्रतिवर्ष लगभग तीन करोड़ टन नाइट्रोजन को अमोनिया में परिवर्तित किया जाता है। जबकि एक अनुमान के अनुसार इससे दस गुना नाइट्रोजन का स्थिरीकरण प्रतिवर्ष प्राकृतिक जैविक प्रक्रिया द्वारा होता है।

नाइट्रोजन स्थिरीकरण की जैव प्रक्रिया में इस्तेमाल होने वाली ऊर्जा प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से सूर्य से, यानी एकदम मुफ्त प्राप्त होती है। इस प्रक्रिया से उत्पन्न नाइट्रोजनयुक्त पदार्थों के उपयोग से कृत्रिम खाद पर होने वाले खर्च में कमी की जा सकती है। इस दृष्टि से विश्वभर में नाइट्रोजन की जैव स्थिरीकरण प्रक्रिया का गहन अध्ययन किया जा रहा है। इस अध्ययन के दो पहलू हैं। एक ओर, नाइट्रोजन स्थिरीकरण के लिए उत्तरदाई सूक्ष्म जीवाणुओं का खेतों में उपयोग करक पैदावार में बढोत्तरी के प्रयास किए जा रहे हैं। दूसरी ओर, नाइट्रोजन स्थिरीकरण के लिए उत्तरदाई जीन के प्रत्यारोपण से उच्च वनस्पतियों को नाइट्रोजन के मामले में स्वयंपोषी बनाने की दिशा में प्रयोग किए जा रहे हैं।

सूर्य-प्रकाश: नील-हरित शैवाल

अनेक प्रकार के जैवघटक नाइट्रोजन स्थिरीकरण की क्षमता रखते हैं। इनमें सूरज की रोशनी का इस्तेमाल करने वाले बैक्टेरिया तथा नील-हरित शैवाल (Blue-Green Algae) प्रमुख हैं। इन दो समूहों में से खेती में उपयोग की दृष्टि से नील-हरित शैवाल अधिक

दलहनी फसलों की जड़ों पर दिखाई देने वाली ये गठानें (Nodules) वास्तव में नाइट्रोजन स्थिरीकरण करने वाले बैक्टेरिया का आवास है। ये बैक्टेरिया वायुमंडलीय नाइट्रोजन (N_2) को अमोनिया (NH_3) में तब्दील करते हैं। पौधे इसका इस्तेमाल कर इससे अमीनो अम्ल और प्रोटिन्स का निर्माण करते हैं। चूंकि दलहनों और फली वाली फसलों से मिट्टी में नाइट्रोजन की मात्रा बढ़ती है, इसलिए फसलों का ऐसा चक्र बनाया जाता है कि दलहनों की खेती से बढ़ी हुई नाइट्रोजन की मात्रा का लाभ बाद वाली फसलों को मिल सके।

उपयुक्त है। इस समूह के घटकों को यद्यपि शैवाल कहा जाता है, परन्तु वास्तव में यह साइनोबैक्टेरिया समूह के सदस्य होते हैं। नील-हरित शैवालों की कोशिकाओं में क्लोरोफिल के अलावा दो अन्य रंजक फाइकोसाइनीन एवं फाइकोएरिथ्रिन कुछ कम या अधिक मात्रा में पाए जाते हैं। इन रंजकों की उपस्थिति के कारण नील-हरित शैवाल सूर्य के प्रकाश में विद्यमान हरी एवं पीली प्रकाश किरणों का भी प्रकाश संश्लेषण में उपयोग कर सकती है। इस अनोखी व्यवस्था के कारण नील-हरित शैवाल उन परिस्थितियों में भी सामान्य रूप से वृद्धि करते हैं जिन परिस्थितियों में हरित शैवाल का जीवित रहना कठिन होता है। हरित शैवाल में केवल एक रंजक क्लोरोफिल उपस्थित रहता है जो केवल नीली और लाल प्रकाश किरणों को ही अवशोषित कर सकता है।

शैवाल प्रायः उच्च वनस्पति की छाया में दोमट मिट्टी में पनपते हैं। उच्च वनस्पति की क्लोरोफिल-युक्त पत्तियां प्रकाश संश्लेषण के लिए सूर्य के प्रकाश से नीली व लाल किरणों को

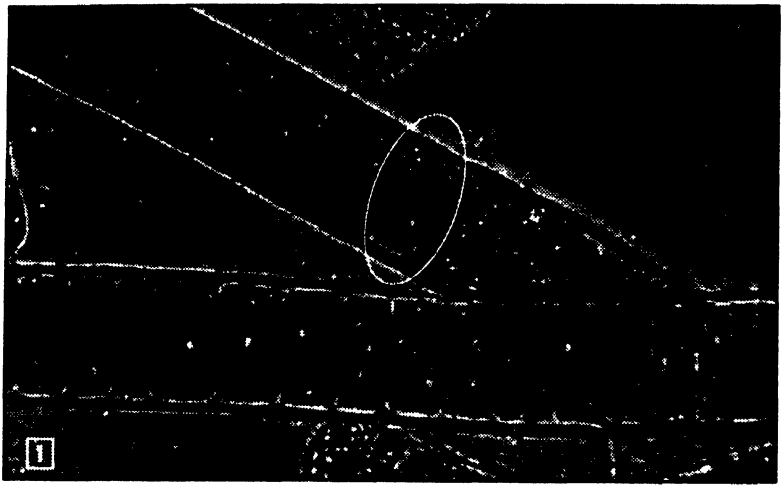

नाइट्रोजन स्थिरीकरण में भाग लेने वाले सायनोबैक्टेरिया परिवार का, फिलामेंट के आकार का सायटोनीमा। आयताकार कोशिकाओं से बने सायटोनीमा में एक हल्के रंग की कोशिका (गोले से घेरी हुई) ही वह हिस्सा है जहां नाइट्रोजन स्थिरीकरण का काम होता है। इस हिस्से को हिटेरोसाइट कहते हैं। हिटेरोसाइट स्थिर की गई नाइट्रोजन को अपने आसपास की कोशिकाओं को देता जाता है। यदि यह बैक्टेरिया किसी ऐसे वातावरण में वृद्धि कर रहा हो जहां नाइट्रोजन पर्याप्त मात्रा में हो तो सायटोनीमा में हिटेरोसाइट नहीं पाए जाते; लेकिन बैक्टेरिया को ज़रूरत हो तो हिटेरोसाइट पुनः प्रकट हो जाते हैं। चित्र-1 में गोले से घिरे हुए हिस्से, हिटेरोसाइट का ही क्लोज़अप चित्र-2 और 3 में दिखाया गया है।

अवशोषित करती हैं। पत्तियों से छनकर नीचे आने वाले प्रकाश में नीली व लाल किरणों का अभाव रहता है। अतः वनस्पति की घनी छाया में हरित शैवाल का पनपना कठिन होता है, परन्तु नील-हरित शैवाल सूर्य के शेष प्रकाश से हरी व पीली किरणों का उपयोग प्रकाश संश्लेषण हेतु कर सकती हैं। अतः पेड़-पौधों की घनी छाया में भी नील-हरित शैवाल की सामान्य वृद्धि संभव होती है। नील-हरित शैवाल में नाइट्रोजन स्थिरीकरण की क्षमता होती है। इस समूह की विशेष सक्रिय शैवाल जातियों की पहचान कर इनका उपयोग धान की खेती में नाइट्रोजन पूर्ति के स्रोत के रूप में किया जा सकता है। भारतवर्ष में कई स्थानों पर इस दिशा में अनुसंधान किए जा रहे हैं।

प्रयोगों के दौरान यह देखा गया है कि धान के खेत में नील-हरित शैवाल के संवर्धन (कल्चर) का उपयोग करने से पैदावार में लगभग 10 से

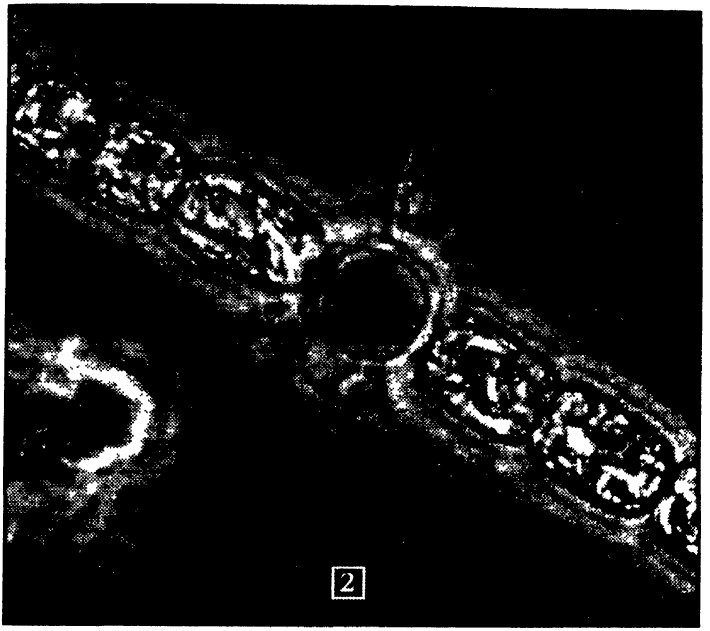
2

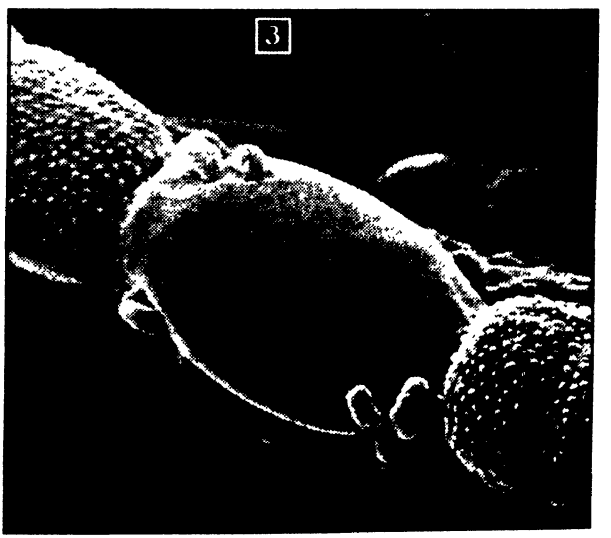
3

20 प्रतिशत तक की वृद्धि होती है। लेकिन निश्चित तौर पर यह कहना मुश्किल है कि यह वृद्धि शैवाल द्वारा उपलब्ध कराए गए नाइट्रोजनयुक्त पदार्थों की वजह से ही होती है। ऐसा पक्का दावा इसलिए भी नहीं किया जा सकता क्योंकि नील-हरित शैवाल अपना भोजन खुद तैयार करते हैं यानी वे अपनी ऊर्जा को खर्च करके नाइट्रोजन का स्थिरीकरण करते हैं। अब इन हालात में यह सोचकर थोड़ी हैरत ही होती है कि नील-हरित शैवाल अपने द्वारा तैयार किए गए नाइट्रोजन को पौधों को मुहैया करवाएगा। हालांकि हमारे द्वारा किए गए प्रयोगों से निरंतर सकारात्मक परिणाम प्राप्त हुए हैं। प्रयोगों से इस बात के संकेत मिलते हैं कि नील-हरित शैवाल की उपस्थिति में उच्च वनस्पतियों की वृद्धि दर भी बढ़ती है। नील-हरित शैवाल दोमट मिट्टी में और धान की क्यारियों के पानी में पनप सकती है। इस माहौल में उन्हें हरित शैवालों के साथ स्पर्धा करनी पड़ती है। लेकिन उच्च वनस्पतियों की पत्तियां और हरित शैवाल दोनों में प्रकाश संश्लेषण के लिए एक ही प्रकार के रंजक (क्लोरोफिल 'ए' एवं 'बी') विद्यमान रहते हैं। जैसा कि पहले बताया जा चुका है उच्च वनस्पतियों की पत्तियों से छनकर आने वाले सूर्य के प्रकाश में हरित शैवाल का पनपना मुश्किल होता है, परन्तु फाइकोसाइनीन व फाइकोएरिथ्रिन रंजकों की उपस्थिति के कारण नील-हरित शैवाल घनी छांव में भी सामान्य गति से बढ़ती है और धान की फसल को मदद करती हुई प्रतीत होती है।

शैवाल: एक वैकल्पिक खुराक

खेतों में नाइट्रोजन आपूर्ति के स्रोत होने के अलावा नील-हरित शैवाल को भोजन सामग्री के रूप में भी उपयोग किया जा सकता है। भारत में भी, शैवालों को किस तरह भोज्य पदार्थ बनाया जाए इस दिशा में शोध चल रही है। भोज्य पदार्थों की दृष्टि से स्पायरूलिना नील-हरित शैवाल उपयुक्त पाए गए हैं।

दुनिया में कुछ तालाब ऐसे हैं जिनके पानी का पीएच 10 से 11 तक है। इस पानी में कुछ ही जीव व वनस्पति जीवन गुज़ार पाते हैं। कुछ शैवाल भी इनमें आसानी से गुज़र-बसर कर लेते हैं। इस पानी में मछलियों की गैर-मौजूदगी की वजह से शैवाल आसानी से पनप पाते हैं। दो देशों, मेक्सिको और चैड में ऐसे तालाब हैं जिनमें ढेर सारा शैवाल होता है। इसे पानी से निकाल कर सुखाते हैं और खाद्य-पदार्थों में मिलाकर खाते हैं। यह एक उच्च प्रोटीनयुक्त आदर्श भोजन है। शैवाल में शुष्क भार के अनुपात में 70% तक प्रोटिन्स पाए जाते हैं। शैवाल

में सेल्यूलोज़ कोशिका भित्तियों की अनुपस्थिति के कारण इसे इंसान भी आसानी से पचा पाते हैं। सम्पूर्ण कोशिका का इस्तेमाल भोज्य सामग्री के रूप में किए जाने से फेंका जाने वाला हिस्सा काफी कम होता है।

इसके विपरीत खेती से प्राप्त फसलों के कुछ अंश (बीज, फल, कंद आदि) ही भोजन के रूप में इस्तेमाल होते हैं, शेष भाग व्यर्थ जाते हैं। इस आधार पर यदि गणना करें तो प्रतिवर्ष तीन फसलें उगाने पर भी भोजन योग्य सामग्री का कुल उत्पादन लगभग 15 टन प्रति हेक्टेयर होगा जबकि स्पायरूलिना का उत्पादन इससे तीन गुना अधिक यानी, लगभग 50 टन प्रति हेक्टेयर हो सकता है। यही कारण है कि विश्व में कई स्थानों पर बड़े पैमाने पर स्पायरूलिना के संवर्धन के प्रयास किए जा रहे हैं।

हमारे देश में दो संस्थाएं इस दिशा में प्रयासरत हैं। ये हैं तमिलनाडु राज्य में चेन्नई के पास मुरूगप्पा चेट्टियार अनुसंधान संस्थान और महाराष्ट्र के वर्धा ज़िले का सेंटर ऑफ साइंस फॉर विलेजिज़। इसी तरह महाराष्ट्र में बुलढाणा ज़िले की लोणार झील में स्पायरूलिना के प्राकृतिक संवर्धन की संभावनाएं तलाशी जा रही हैं।

जीवाणुओं से स्थिरीकरण

धान के खेतों में काफी पानी भरा होता है इसलिए नील-हरित शैवाल के संवर्धन के लिए पर्याप्त जल उपलब्ध रहता है। परन्तु अन्य फसलों में खेतों में इतना पानी भरकर नहीं रखा जाता। इस स्थिति में नील-हरित शैवाल के ज़रिए फसल को नाइट्रोजन उपलब्ध कराना संभव नहीं होता है। ऐसी फसलों को प्राकृतिक नाइट्रोजन उपलब्ध करवाने हेतु अन्य जीवाणुओं का उपयोग किया जा सकता है। एझोटोबैक्टर और एझोस्पिरिलम परिवार के जीवाणु वातावरण के नाइट्रोजन का स्थिरीकरण करते हैं। ये जीवाणु जैव पोषक तत्वों से युक्त नम भूमि में पनपते हैं। इनकी उपस्थिति से भूमि में नाइट्रोजनयुक्त पोषक तत्वों की वृद्धि होती है। इसलिए इस भूमि में फसलों की वृद्धि के लिए नाइट्रोजन-युक्त खाद देने की आवश्यकता नहीं होती। जीवाणुओं की इस क्षमता का उपयोग वर्धा के सेंटर ऑफ साइंस फॉर विलेजिज़ द्वारा खाद बनाने की 'नाडेप पद्धति' में किया गया है। जैव त्याज्य पदार्थों से खाद बनाने की परंपरागत विधि में पदार्थों को एक गड्ढे में, वायुरहित वातावरण में, सड़ने के लिए छोड़ दिया जाता है। परन्तु नाडेप पद्धति में यह प्रक्रिया भूमि के ऊपर वायु की उपस्थिति में संपन्न कराई जाती है। नाडेप पद्धति में खेतों की त्याज्य सामग्री और मिट्टी की परतें एक-दूसरे पर बिछाई जाती हैं।

मिट्टी में कुदरती तौर पर पाए जाने वाले एझोटोबैक्टर जीवाणु त्याज्य सामग्री की परतों से पोषक कार्बनिक पदार्थ और वातावरण से नाइट्रोजन ग्रहण करके अपनी संख्या में वृद्धि करते हैं। समय के साथ खाद के इस ढेर में कार्बनिक पदार्थों की मात्रा घटती जाती है और नाइट्रोजनयुक्त पदार्थों की मात्रा बढ़ती है। प्राकृतिक किण्वन (फरमेंटेशन) की इस प्रक्रिया से प्राप्त खाद के इस ढेर में 60% मिट्टी होते हुए भी खाद की गुणवत्ता उत्तम होती है। यह खाद गोबर खाद के समतुल्य होता है। नाइट्रोजनयुक्त पोषक पदार्थों के अलावा एझोटोबैक्टर फसल के लिए वृद्धिजनक संप्रेरक भी उपलब्ध कराते हैं।

जीवाणुओं से संवर्धन

यह देखा गया है कि बीजों को बोनी से पूर्व यदि जीवाणु के संवर्धन (कल्चर) से अथवा जिस माध्यम में ये पनपे हैं उससे उपचारित किया जाए तो पैदावार में 10 से 20% तक की वृद्धि होती है।

उष्णकटिबंधीय इलाके के अनेक घास-कुल के पौधों की जडों में एझोस्पिरिलम नाम का नाइट्रोजन स्थिरीकरण करने वाला जीवाणु पाया जाता है। इसकी खोज ब्राज़ील की एक शोधकर्त्ता श्रीमती डोबेरायनर द्वारा की गई थी। बाद में भारत में किए गए प्रयोगों के दौरान देखा गया कि ज्वार, बाजरा एवं अन्य घास-कुल के पौधों की जड़ों में भी एझोस्पिरिलम पाया जाता है। एझोस्पिरिलम के संवर्धन से बीजों को उपचारित करने की एक विधि दिल्ली स्थित भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान द्वारा विकसित की गई है।

कम बारिश वाले इलाकों में शुष्क खेती का प्रचलन है। शुष्क खेती में खाद का उपयोग नहीं किया जा सकता और पैदावार भी कम होती है। ऐसी हालत में अच्छी पैदावार लेने के लिए नाइट्रोजन का स्थिरीकरण करने वाले जीवाणुओं से मदद ली जा सकती है। शुष्क खेती में एझोस्पिरिलम द्वारा उपचारित बीजों का प्रयोग करने से पैदावार में 15 से 80% तक की बढ़ोत्तरी हो सकती है।

रायज़ोबियम का इस्तेमाल

उपरोक्त तीन जीवाणुओं के अतिरिक्त फसल को फायदा पहुंचाने वाला एक अन्य जीवाणु भी है- रायज़ोबियम। ये जीवाणु दलहनी पौधों की जड़ों पर गुठलीनुमा रचनाओं (Nodules) के रूप में पाए जाते हैं। ये जीवाणु जिन पौधों की जड़ों पर होते हैं उन पौधों से कार्बनिक पदार्थ प्राप्त करते हैं और बदले में उन्हें नाइट्रोजन-युक्त यौगिक उपलब्ध कराते हैं।

रायज़ोबियम द्वारा नाइट्रोजन के स्थिरीकरण की प्रक्रिया में जो अन्य

उत्पाद बनते हैं उनमें हाइड्रोजन भी शामिल है। यदि चयापचय की प्रक्रिया में इस हाइड्रोजन का उपयोग नहीं होता है तो इसके निर्माण में इस्तेमाल ऊर्जा व्यर्थ हो जाती है। रायज़ोबियम की कुछ विशिष्ट नस्लें (Strains) इस हाइड्रोजन का उपयोग कर लेती हैं। इस क्रिया को हाइड्रोजन ग्रहण करना कहते हैं। इस क्रिया के लिए उत्तरदाई जीन को हप जीन कहते हैं। रायज़ोबियम के जिन प्रकार में यह जीन पाया जाता है वह नाइट्रोजन स्थिरीकरण की प्रक्रिया में अधिक सक्रिय होते हैं।

रायज़ोबियम एक सहजीवी जीवाणु है। विशिष्ट प्रजाति का जीवाणु विशिष्ट पौधे के साथ रहता है और पौधे की जड़ों पर गठान बना सकता है। अतः फसल की वृद्धि के लिए रायज़ोबियम संवर्धन का उपयोग करते समय उचित जीवाणु का चयन आवश्यक होता है, अन्यथा अपेक्षित परिणाम प्राप्त नहीं होते। मूंगफली के पौधों की जड़ों पर गठानें निर्मित करने वाला रायज़ोबियम जीवाणु प्रकृति में लगभग सभी जगह पाया जाता है। इसलिए मूलतः अमेरिकी महाद्वीप पर उगने वाला यह पौधा अनेक उष्णकटिबंधीय देशों में फैल चुका है। इसके विपरीत सोयाबीन के सहअस्तित्व में रहने वाला रायज़ोबियम जापोनिकम केवल सुदूर पूर्व के देशों में ही पाया जाता है। अतः अन्य देशों में सोयाबीन का प्रसार अपेक्षाकृत कम हुआ है। सुदूर पूर्व के अलावा जहां सोयाबीन को बोया जाता है वहां बोनी के समय खेतों में रायज़ोबियम जापोनिकम के संवर्धन का प्रयोग करना आवश्यक होता है।

आनुवांशिक इंजीनियरिंग

नाइट्रोजन स्थिरीकरण के लिए उत्तरदाई जीन को अन्य वनस्पतियों की कोशिकाओं में प्रत्यारोपित करने की दिशा में विश्वभर में अनुसंधान किए जा रहे हैं। इसके लिए क्लेब्सिएला न्यूमोनिए (Klebsiella Pneumoniae) नाम के जीवाणु का चयन किया गया है। इस जीवाणु के गुणसूत्रों के अध्ययन से ज्ञात हुआ है कि नाइट्रोजन स्थिरीकरण की प्रक्रिया में सत्रह जीन भाग लेते हैं। ये जीन एक शृंखला के रूप में एक-दूसरे से जुड़े होते हैं। जीवाणु में प्लास्मिड नाम का एक छोटा चक्राकार डी. एन. ए. अणु पाया जाता है। प्लास्मिड का वाहक के रूप में प्रयोग करके जीन को दूसरे जीवाणु की कोशिका में प्रविष्ट कराया जा सकता है। इस प्रक्रिया के द्वारा ई. कोलाई नाम के जीवाणु में जीन को प्रत्यारोपित करना संभव हुआ है। इसके अलावा लगभग बीस भिन्न-भिन्न किस्म के जीवाणुओं में जीन्स का प्रत्यारोपण सफलतापूर्वक किया गया है। प्रत्यारोपित जीन मेहमान कोशिका में न

केवल कार्यशील रहते हैं बल्कि कोशिका विभाजन के समय अगली पीढ़ियों की कोशिकाओं में स्थानांतरित भी हो जाते हैं। इस सफलता को देखते हुए वैज्ञानिकों को विश्वास है कि डी. एन. ए. तकनीक द्वारा उच्च वनस्पतियों में नाइट्रोजन स्थिरीकरण की क्षमता विकसित की जा सकती है, दूसरे शब्दों में वनस्पतियों को आत्मनिर्भर बनाया जा सकता है। परन्तु वर्तमान में यह एक विवाद का विषय बना हुआ है। इस विवाद के दो पहलू हैं :

1. कुछ विश्लेषकों के अनुसार यदि उच्च वनस्पतियों द्वारा नाइट्रोजन स्थिरीकरण का कार्य स्वतः किया जाता है तो उनके द्वारा प्रकाश संश्लेषण में इस्तेमाल होने वाली ऊर्जा का 25% अंश नाइट्रोजन स्थिरीकरण में खर्च होगा। फलस्वरूप उत्पादन में 25% की कमी होगी। एक उदाहरण द्वारा इस स्थिति को स्पष्ट करना उचित होगा। मसलन, महाराष्ट्र राज्य में संकर ज्वार की फसल के लिए प्रति हेक्टेयर सौ किलोग्राम नाइट्रोजन खाद की अनुशंसा की जाती है। इस अनुपात में नाइट्रोजन खाद देने पर लगभग 5 से 6 टन अनाज और 25 गाड़ी पशुचारा प्राप्त होता है। यदि जीन प्रत्यारोपण से ज्वार को नाइट्रोजन के संबंध में आत्मनिर्भर बनाया जाता है तो प्रति हेक्टेयर 100 किलोग्राम खाद (लगभग 1200 रुपए) की बचत की जा सकती है। परन्तु इसके बदले में एक से डेढ़ टन अनाज (कीमत 7000 से 10,000 रुपए) और छः गाड़ी पशुचारे (मूल्य 5000 रुपए) का घाटा सहन करना पड़ सकता है।
2. अब विवाद का दूसरा पहलू। वर्षा की अनिश्चितता के कारण महाराष्ट्र के कुछ भागों में असिंचित खेती की जाती है। असिंचित खेती में किसी भी प्रकार की खाद का उपयोग नहीं किया जाता। इस तरह की गई ज्वार की खेती से प्रति हेक्टेयर लगभग 600 किलोग्राम अनाज प्राप्त होता है। इसके विपरीत जब ज्वार के पौधे को नाइट्रोजन के संबंध में आत्मनिर्भर बनाया जाता है तब पूर्व के उदाहरण में दिए गए आकलन के अनुसार अनाज का उत्पादन प्रति हेक्टेयर चार से साढ़े चार टन होगा। अर्थात सामान्य फसल की तुलना में 6-7 गुना अधिक। इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि जहां रासायनिक खाद का प्रयोग वर्जित होता है वहां डी. एन. ए. तकनीक द्वारा फसल को नाइट्रोजन के संबंध में आत्मनिर्भर बनाना लाभदायक हो सकता है।

अंत में इस बात पर विचार करना

उचित होगा कि हमारे ऊर्जा के स्रोत धीरे-धीरे घटते जा रहे हैं। ऐसे में रासायनिक खादों की लागत दिन-पर-दिन बढ़ती जा रही है और आने वाले कुछ सालों में नाइट्रोजनयुक्त रासायनिक खाद इतने अधिक महंगे हो जाएंगे कि फसलों को नाइट्रोजन के मामले में स्वावलंबी बनाने के अलावा हमारे पास अन्य कोई विकल्प शेष नहीं बचेगा।

आ. दि. कर्वे: एप्रोप्रिएट रूरल टेक्नॉलॉजी इंस्टीट्यूट, पुणे के अध्यक्ष हैं। कृषि विशेषज्ञ हैं, साथ ही विज्ञान लेखन में रुचि रखते हैं।

मराठी से अनुवाद: सुधा हर्डीकर: रसायन विज्ञान की सेवानिवृत प्राध्यापिका।

यह लेख मराठी संदर्भ, अंक 11, जून-जुलाई 2001 से अनुदित किया गया है।

सवालीराम से पूछा है सवाल

अक्सर घर पर मुझे रोज़ नहाने के लिए कहा जाता है। साथ ही कहा जाता है – साबुन लगाकर नहाओ, सारे जीवाणु मर जाएंगे। मैं यह जानना चाहता हूं कि साबुन कैसे बनाया जाता है, क्या साबुन से सच में जीवाणु मरते हैं?

– मयंक गुप्ता, होशंगाबाद

यदि आप इस सवाल का जवाब जानते हैं तो कृपया अपना जवाब संदर्भ के पते पर जल्द-से-जल्द लिखकर भेजिए।